International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 19-06-2023, Accepted: 04-07-2023, Published: 20-07-2023
Volume 9, Issue 4, 2023, Page No. 28-31

वर्तमान युग में कबीर की प्रासंगिकता

सुरेन्द्र कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी, राजकीय महाविद्यलय कोसली (रेवाड़ी), हरियाणा, भारत

सारांश
कबीर दास हिंदी के महँ कवियों में से एक है। उत्तर भारत की हिंदी भाषी जनता में तुलसीदास के बाद यदि किसी अन्य कवि का काव्य लोगों की जुबान पर चढ़ा हुआ है तो वह कबीर ही हैं। उनकी साखियां, उनके पद लोगों को कंठस्थ हैं। उनकी लोकप्रियता का मूल कारण उनका स्वानुभूत काव्य व अभिव्यक्ति का खरापन है। उन्हें जो समाज के लिए अच्छा लगा उसका खुलकर समर्थन किया और जो उन्हें बुरा लगा उसका विरोध उन्होंने निर्भीकता से किया। उनका यही स्वाभाव लोगों को पसंद आया। कबीर युग दृष्टा कवि थे। उनका व्यक्तित्व, उनकी वाणी युगीन परिस्थितियों की देन है। कबीर ने अपने वर्तमान को ही नहीं भोगा बल्कि भविष्य की चिरंतर समस्याओं को भी पहचाना। कबीर का समाज जात–पांत, छुआछूत, धार्मिक पाखंड, मिथ्याडंबरों, रुढ़ियों, अंधविश्वासों, हिन्दू–मुस्लिम वैमनष्य, शोषण उत्पीड़न आदि से त्रस्त तथा पथभ्रष्ट था। समाज के इस पतन में धर्म, धर्मशास्त्रों तथा धर्म के ठेकेदारों की अहम भूमिका थी। कबीर ने समय की नस को पहचाना। समाज के मार्गदर्शन हेतु एक बड़े संघर्ष एवं परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की। तत्कालीन विकृतियों और विसंगतियों के खिलाफ लड़ने की अथक दृढ़ता एवं सत्य की साधना का अदम्य साहस उन्हें जीवनानुभवों से मिला। उन्होंने जिन सामाजिक, सांस्कृतिक विषमताओं के खिलाफ आजीवन संघर्ष किया, वे आज भी यथावत हैं। कबीरदास का वैचारिक आंदोलन आज भी वर्ग विहीन समाज के निर्माण, मानवता की बहाली, प्रेम, हिन्दू–मुस्लिम सौहार्द, आडंबरहीन भक्ति तथा नैतिकता के निर्माण के लिए नितांत प्रासंगिक है।

मूल शब्दः कबीर की प्रासंगिकता, जात–पांत, छुआछूत, धार्मिक पाखंड, हिन्दू–मुस्लिम

भूमिका
कबीर दास हिंदी के महँ कवियों में से एक है। उत्तर भारत की हिंदी भाषी जनता में तुलसीदास के बाद यदि किसी अन्य कवि का काव्य लोगों की जुबान पर चढ़ा हुआ है तो वह कबीर ही हैं। उनकी साखियां, उनके पद लोगों को कंठस्थ हैं। उनकी लोकप्रियता का मूल कारण उनका स्वानुभूत काव्य व अभिव्यक्ति का खरापन है। उन्हें जो समाज के लिए अच्छा लगा उसका खुलकर समर्थन किया और जो उन्हें बुरा लगा उसका विरोध उन्होंने निर्भीकता से किया। उनका यही स्वाभाव लोगों को पसंद आया। कबीर युग दृष्टा कवि थे। उनका व्यक्तित्व, उनकी वाणी युगीन परिस्थितियों की देन है। कबीर ने अपने वर्तमान को ही नहीं भोगा बल्कि भविष्य की चिरंतर समस्याओं को भी पहचाना। कबीर का समाज जात–पांत, छुआछूत, धार्मिक पाखंड, मिथ्याडंबरों, रुढ़ियों, अंधविश्वासों, हिन्दू–मुस्लिम वैमनष्य, शोषण. उत्पीड़न आदि से त्रस्त तथा पथभ्रष्ट था। समाज के इस पतन में धर्म, धर्मशास्त्रों तथा धर्म के ठेकेदारों की अहम भूमिका थी। कबीर ने समय की नस को पहचाना। समाज के मार्गदर्शन हेतु एक बड़े संघर्ष एवं परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की। तत्कालीन विकृतियों और विसंगतियों के खिलाफ लड़ने की अथक दृढ़ता एवं सत्य की साधना का अदम्य साहस उन्हें जीवनानुभवों से मिला। उन्होंने जिन सामाजिक, सांस्कृतिक विषमताओं के खिलाफ आजीवन संघर्ष किया, वे आज भी यथावत हैं। कबीरदास का वैचारिक आंदोलन आज भी वर्ग. विहीन समाज के निर्माण, मानवता की बहाली, प्रेम, हिन्दू–मुस्लिम सौहार्द, आडंबरहीन भक्ति तथा नैतिकता के निर्माण के लिए नितांत प्रासंगिक है।

मूल आलेख
हर युग का साहित्य अपने युग का आईना होता है। उसमें युगीन चेतनाएँ, विसंगतियाँ एवं विद्रूपताएँ अपने यथार्थ रूप में सन्निहित होती हैं। एक जागरूक रचनाकार केवल अपने समय को नहीं जीता बल्कि अपने अतीत और भविष्य में भी रचता बसता है। वह समाज से मूल्य ग्रहण कर उन्हें संवर्द्धित, परिष्कृत कर समाज के लिए उपयोगी, सार्थक तथा स्वस्थ मूल्यों का निर्धारण करता है। ऐसा साहित्य अपने युग का इतिहास होने के साथसाथ युगांतकारी तथा कालजयी होता है। वर्तमान समय में हमारे चारों ओर बढ़ती जटिलताओं, विडंबनाओं एवं विसंगतियों के कारण बार–बार पूर्ववर्ती साहित्य एवं विचारों की प्रासंगिकता की मांग बड़ी है। ऐसा पूर्ववर्ती साहित्य जो हमारी सत वृत्तियों का मंडन कर असत वृत्तियों का खंडन करने के साथ.साथ मानव कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर समाज को भविष्योन्मुख बनाने को प्रतिबद्ध हो, सदैव प्रासंगिक रहता है। रमेशचन्द्र शाह रचना की प्रासंगिकता पर लिखते हैं, श्रचना की प्रासंगिकता का निकष इकहरा नहीं हो सकता, क्योंकि वह रचना की प्रासंगिकता का निकष है, जिसकी रचनात्मकता काव्य, संस्कृति के मूल्यों पर भी प्रासंगिक हो। उसके साथ. ही. साथ रचना वह प्रासंगिक है जो अपने समय की मानव सच्चाईयों का उनकी पूरी जटिलता में साक्षात्कार कराती हो।[1]

मध्ययुग में कबीर और संतों की वाणी ने जो अलख जगाया वह आज भी उतना ही महत्वपूर्ण और प्रासंगिक है जितना तत्कालीन युग में था। कबीर अपने युग की उपज हैं। युगीन परिस्थितियों एवं समय की मांग ने उनके व्यक्तित्व को गढ़ा। वे सारग्राही महात्मा थे। जिन्होंने अपने समय में प्रचलित सभी मत.मतांतरों के सार को ग्रहण किया। उन्हें अपने तर्क और अनुभव की कसौटी पर कसाण् जो विश्वास, मान्यताएँ, मानवता, नैतिकता एवं भक्ति की राह में व्यर्थ बाधक थे उनका विरोध किया। कबीर सच्चे भक्त होने के साथ–साथ एक प्रखर, तेजस्वी, स्पष्ट वक्ता, साहसी, निर्भीक, निरभिमानी, विनय, सहृदय, परदुखकातर आदि गुणों के धनी थे। सामाजिक कुरीतियों, रूढ़ियों. आडंबरों, दुराचार, पाखंडादि का जैसा तीव्र विरोध उनमें देखा जाता है, वह अद्वितीय है। मध्ययुग मुगलों के आक्रमणों, धर्मांतरण, देशी राजाओं की विलासिता, धार्मिक पाखण्डादि से उपजे भय, कुंठा,

सांप्रदायिकता, रूढ़ियों, अंधविश्वासों एवं कुरीतियों का युग था। हताश.निराश जनता मंत्र, योग, जात–पांत, छुआछूत, दमन–शोषण से त्रस्त थी। समाज नैतिक पतन के गहरे गर्त में गिर रहा था। ऐसे में संत कवियों ने समय की नस को पकड़ा। उन्होंने जो कहा अपने अनुभव से कहा। जो देखा, भोगा और सहा उसी की काव्यात्मक अभिव्यक्ति कबीर की वाणी है। उनका कहना था कि मनुष्य को अल्लाह, खुदा आदि नामों के फेर में न पड़कर उस परम तत्व को स्वीकार कर लेना चाहिए। यह सत्य सर्वत्र व्यापक है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई शक्ति नहीं है। वे कहते हैं–

"जोगी गोरख गोरख करै, हिन्दू राम राम उच्चारै। मुसलमान कह एक खुदाई, कबीर को स्वामी घटि घटि रह्यो समाई ।"[2]

कबीर से लेकर अन्य सभी संत समाज के अति सामान्य समझे जाने वाले पेशे से संबंध रखते थे। ये मोची, बुनकर, दर्जी, धोबी, लोहार आदि थे। समाज अनेक जातियों, उपजातियों, विभिन्न वर्गों में विभाजित था। फलस्वरूप जातिप्रथा तथा भेदभाव ने समाज को खोखला कर दिया था। कबीर मानव मात्र के समानता के पक्षधर थे। उनके अनुसार ऊँचे कुल में जन्म लेने से या ब्राह्मण होने मात्र से कोई ऊँचा या श्रेष्ठ नहीं हो जाता। मनुष्य अपने आचरण एवं सुंदर कर्मों से ऊँचा बनता है। सोने के कलश में मदिरा भरा हो तो निंदनीय हो जाता हैं

ऊँचे कुल का जनमिया, जे करणी ऊँच न होइ।
सुबरन कलस सुरा भरा, साधु निंदा सोइ।।[3]

कबीर का युग सामाजिक.सांस्कृतिक दृष्टि से अनास्थाए विघटन और वर्जनाओं का युग था। इनके पोषण में धर्म की अहम भूमिका थी। सामाजिक, राजनैतिक सभी निर्णयों के आधार धर्मशास्त्र होते थे। कहने को यह धर्म था परन्तु मानवीय धरातल पर अधर्म से कम नहीं। जो धर्म समाज, आस्था, राजनीति सभी के मूल में था, वही समाज के एक वर्ग के शोषण, उत्पीड़न एवं अन्याय के लिए जिम्मेदार भी था। जिन्हें पूजा–पाठ, पठन–पाठन तथा समता का कोई अधिकार प्राप्त न था। वे अछूत, निम्न थे सभ्य कहे जाने वाले समाज के लिए। अतः कबीर ने ईश्वर भक्ति सबके लिए सुलभ बनाई निर्गुणोपासना के द्वारा। निर्गुण भक्ति ने समाज के निम्न वर्गों के लिए भक्ति और धर्म का द्वार खोल दिया। इसमें मंदिर, मस्जिद, मूर्ति, छापा–तिलक, पंडित, मंत्रादि किसी कर्मकांड की कोई जगह न थी। कबीर ने समाज को अहसास दिलाया कि भक्ति और भगवान किसी की पैतृक संपत्ति नहीं है। उस पर सभी का अधिकार है। भक्ति के लिए किसी विशेष क्षण, तिथि, वेशभूषा, कर्मकांड, स्थान की आवश्यकता नहीं होती। कहीं भी, किसी भी वक्त सोते–जागते, खाते–पीते, घर बैठे, काम करते भक्ति की जा सकती है। बशर्ते उसमें सच्चाई, सरलता और प्रेम निहित हो। कबीर के अनुसार भक्त और भगवान का प्रेम स्वार्थहीन होता है। सच्चे प्रेम से भगवान को पाया जा सकता है। कबीर भक्ति में प्रेम को अत्यंत महत्वपूर्ण मानते हैं, क्योंकि प्रेम के अभाव में भक्ति निरर्थक और दंभमात्र है।

पाखंडी ही ईश्वर को पाने के लिए पूजा–व्रत, तीर्थ, मक्का.मदीना, मंदिर तीर्थादि में भटकते फिरते हैं। फिर भी उन्हें ईश्वर नहीं मिलते। हिन्दू चौबीस एकादशी के व्रत और मुसलमान रमजान का एक महीना रोजा रखते हैं। उनसे कबीर पूछते हैं साल के दूसरे दिन ईश्वर कहा जाते हैं, हिन्दू पूर्वाभिमुख करते हैं और मुसलमान पश्चिमाभिमुख होकर नमाज पड़ते हैं। कैसे राम का देश पूर्व और रहीम का पश्चिम हो सकता है, राम और रहीम तो एक ही हैं। राम–रहीम की एकता का प्रतिपादन कर सारे देश को एकता के सूत्र में बांधने का प्रयत्न किया।,

कबीर ने पवित्रता और श्रेष्ठता का ढोंग करने वाले मुल्ला. मौलवियों तथा हिंदुओं की पोल खोल कर रख दी है। हिन्दू स्वयं को श्रेष्ठ, ऊंच कुल का मानकर अछूतों के हाथों का पानी भी नहीं पीते। परंतु दूसरी ओर वेश्याओं के चरणों में पड़े रहते हैं। यही हिन्दुत्व है। दूसरी और मुसलमान भी अपने ही घर में सगाई करते हैं। मांसाहार करते हैं और पवित्रता का ढोंग करते हैं। यही इस्लाम है। दोनों ही धर्म के अनुयायी चारित्रिक दृष्टि से भ्रष्ट हैं। उनकी कथनी और करनी में पर्याप्त अंतर हैं। उनकी दृष्टि में जो सच्चा भक्त होता है वह सभी प्रकार की संकीर्णताओं, ऊँच–नींच भेदभाव तथा अहं से ऊपर उठकर मानवता का संदेश देता है।

कबीर ने निर्गुण भक्ति के द्वारा धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक मुक्ति के प्रश्नों को उठाया। उसके मूल में मानवमात्र की समता, स्वतन्त्रता एवं भातृत्व की भावना प्रमुख थी। इसने समाज के उपेक्षित और प्रताड़ित वर्ग में आत्मसम्मान की भावना जगाई। जिसने वैचारिक संघर्ष को जन्म दिया। अतः कबीर की निर्गुण भक्ति और उसका उद्देश्य मध्ययुग में जितना प्रासंगिक था, आज भी उतना ही प्रासंगिक बना हुआ है। स्वतंत्र भारत में वैधानिक रूप से सभी को समता, स्वतन्त्रता एवं समाधिकार प्राप्त हैं। बावजूद इसके समाज का एक विशाल वर्ग भेदभाव, छुआछूत, अशिक्षा, गरीबी से ऊबरा नहीं है। उनके लिए समता और स्वतंत्रता के मायने क्या होंगेंघ् इस पर रवीद्र कुमार सिंह लिखते हैं–

संविधान में समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के अधिकारों की गारंटी के बावजूद व्यवहारिक दृष्टि से असमानता, पराधीनता और पारस्परिक विरोध को ही बढ़ावा मिल रहा है। ऐसी स्थिति में संत कवियों की वैचारिक संघर्ष चेतना, उनकी जनतान्त्रिक अवधारणा, समानता और भाई.चारे के आदर्श आदि हमारे लिए संघर्ष का एक नया मार्ग प्रस्तुत करते हैं। यह संघर्ष विभिन्न राजनीतिक.सामाजिक संगठनों के साथ ही साहित्य और कला के मोर्चे पर भी तेज़ हुआ है। अतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि आज की परिस्थितियों में संत–काव्य की प्रासंगिकता अधिक बढ़ रही है।[4]

कबीर ने मध्ययुग में एक ऐसे सामाजिक, सांस्कृतिक, वैचारिक आंदोलन का सूत्रपात किया जो वर्तमान में वर्ग–विहीन समाज की ओर अग्रसर होने के लिए नितांत प्रासंगिक है। उन्होनें जिन विसंगतियों, वर्जनाओं, कुरीतियों एवं कुप्रथाओं के खिलाफ आजीवन संघर्ष किया वे आज भी यथावत हैं। कबीर युगीन समाज को रूढ़ियों, विकृतियों एवं अंधविश्वास ने खोखला कर दिया था। धर्म एवं भक्ति में बाह्याडंबरों की बहुलता थी। समाज की ऐसी दशा से वे विचलित हो उठे थे। कबीर के अनुसार आडंबर ही समाज में लड़ाई–झगड़े, संकीर्णता और असहिष्णुता के कारण बनते हैं। आडंबरों से समाज में कभी स्थायी सुख, शांति एवं भाईचारे की बहाली नहीं हो सकती। समाज को एक सूत्र में बांधने के लिए उन्होंने धर्म एवं भक्ति के बाह्याचारों का कड़ा विरोध कर सात्विक भक्ति पर जोर दिया। आज भी स्थिति बदली नहीं है। धर्म और भक्ति का रूप और विकृत होता जा रहा है। इनमें व्याप्त दिखावा, बाह्याचारों की प्रदर्शनी, बड़प्पन की मानसिकता ने समाज में संकीर्णता, असहिष्णुता, एवं धार्मिक अराजकता को बढ़ावा दिया है। हमारे तीर्थ स्थानों पर भक्ति नहीं लूट मची है। अतः कबीर आज भी प्रासंगिक हैं.

श्मोको कहां ढूंढत बंदे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास में।
ना तो कौनो क्रिया करम में, नहीं जोग बैराग में।।[5]

कबीर ने देखा कि तत्कालीन समाज में हिन्दू–मुसलमान दोनों ही अपने रास्ते से भटक गए थे। उनमें, बाह्याचारों की प्रधानता थी। सत्य, अहिंसा, त्याग, संतोषादि मूल्य विकृत हो चुके थे। उनमें अपने धर्मों को लेकर मिथ्या दंभ एवं श्रेष्ठता बोध हावी होती जा रही थी। ऐसी मानसिकता को बढ़ावा देने वाले मुल्ला.मौलवी और पंडितादि थे। अतः कबीर ने इनकी तीखी आलोचना की। ईश्वर घट–घट व्यापी हैं। उसे पाने के लिए किसी दिखावे की आवश्यकता नहीं। कबीर कहते हैं कि मुसलमान दिन भर रोजा रखते हैं और रात को गाय मारते हैं। कहाँ भक्ति और कहाँ हत्या, ऐसे परस्पर विरोधी कर्मों से ईश्वर कैसे खुश होंगे–

श्दिन में रोजा रहत हैं, रात हनत हैं गाय।
कहं हत्या कहं बंदगी, कैसे खुशी खुदाय।।[6]

कबीर ने हिन्दू समाज में व्याप्त भेष, तिलक, माला, योगाचार, व्रत, उपवास, श्राद्ध, तीर्थयात्रा तथा अन्य अनेक अंधविश्वासों की तीव्र आलोचना की। उनकी आलोचना और विरोध युक्ति संगत एवं तर्कयुक्त हैं। कबीर ने भगवाधारी ठगों से भी समाज को सावधान किया है। उनके अनुसार केवल संतों जैसे वस्त्र धारण करने या दिखने से कोई संत नहीं होता। प्रवृत्ति एवं व्यवहार में संत होना आवश्यक है। वर्तमान समाज में भी ऐसे भगवाधारियों की कमी नहीं है। कहने को तो संत हैं लेकिन आये दिन भोगदृविलास, झूठ–फरेब, सूरा–सुंदरी जैसे चारित्रिक, नैतिक पतन के गहरे गर्त में डूबे हुए हैं। आश्चर्य तो तब अधिक होता है जब इन ढोंगियों के पीछे हमारा शिक्षित–बुद्धिजीवी वर्ग हाथ जोड़े घूमता है। अतः आज फिर से कबीर को आत्मसात करने की महती आवश्यकता है–

साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिं
धन का भूखा जो फिरै, सो तो साधू नाहिं।।[7]

कबीर समाज में प्रचलित अंधविश्वासों को उखाड़ फेंकना चाहते थे। हिंदुओं में यह विश्वास प्रचलित था कि काशी में मृत्यु होने पर स्वर्ग और मगहर में होने पर नरक की प्राप्ति होती है। इस अंधविश्वास को तोड़ने के लिए उन्होंने स्वयं मगहर में महानिर्वाण लिया। उनका मानना है कि व्यक्ति अगर जीवन भर भक्ति नहीं करता। अच्छे कर्म नहीं करता तो केवल काशी में हुई मृत्यु से उसे स्वर्ग लाभ नहीं हो सकता। कबीर निष्ठाहीन व्यक्ति न थे। प्रेम, विनय, श्रद्धा, अहिंसा, सच्चाई, करुणा, दया, ममता जैसे मानवीय मूल्यों के प्रति उनमें अपार विश्वास है। किन्तु उनकी श्रद्धा और निष्ठा तर्क पर आधारित है। तर्कहीन अंधविश्वास तथा रूढ़ियों के वे विरोधी रहे हैं।
इसी तरह कबीर श्राद्ध जैसे लोकाचारों का भी विरोध करते हैं। जब तक अपने माता–पिता या परिवार के बिजुर्ग जीवित हैं। उनकी सेवा–देखभाल करनी चाहिए। उन्हें पूरा सम्मान और प्रेम देना चाहिए। मगर अक्सर देखा जाता है कि परिवार में बुजुर्ग उपेक्षित होते हैं। ऐसी अवस्था में उनके मृत्योपरांत किया जाने वाला श्राद्ध व्यर्थ है। पितरों के नाम पर होने वाले श्राद्ध में पितर आकर क्या खाते हैंघ् वह अन्नादि तो कौवें और कुत्ते खाते हैं–

जीवत पितर न मानै कोऊ, मुए सराद्ध कराही।
पितर भी बपुरे कहु क्यों पावहिं, कौवा कुकुर खाहीं।।[8]

कबीर के ये विचार आज और प्रासंगिक हो गए हैं। आज के भागदौड़ के जीवन में व्यक्ति मशीन की तरह संवेदनहीन बनता जा रहा है। सब कुछ अकेले भोग करने की लालसा ने एकल परिवारों को बढ़ावा दिया है। माँ–बाप, सास–ससुर बोझ बनने लगें। अतः बिडम्बना है कि जिस गति से मनुष्य प्रगति के सोपानों को छू रहा है। वृद्धाश्रमों की संख्या भी तेजी से बढ़ रही हैं। जीवित रहते वक्त कोई नहीं पूछता सगे–संबंधियों को। घर में विद्यमान साक्षात पितरों को भर पेट अन्न और प्रेम के दो बोल नसीब नहीं होते। मृत्योपरांत उनके नाम पर पिंड भर–भर दक्षिणा किये जाते हैं। जिनका कोई अंश पूर्वजों तक नहीं पहुंचता। कौवे–कुत्ते खा जाते हैं।
कबीर को मृत्यु से डर न था। वे इस रहस्य को समझ चुके थे कि मृत्यु अनिवार्य है। इस ज्ञान ने उन्हें निर्भय बना दिया था। यही कारण था कि उन्होंने सदैव अधर्म, अन्याय और असंगतियों का विरोध किया। मुल्ला, मौलवियों, पंडितों और जोगियों से भी उलझ पड़ते थे। मृत्यु के भय से कभी सत्य का दामन नहीं छोड़ा।
कबीर के ये विचार आज भी प्रासंगिक हैं। जो जन्म लेता है, उसकी मृत्यु निश्चित है। अतः मनुष्य को चाहिए कि सत्य का साथ दे। मृत्यु करीब है यह जानकर सभी से प्रेम तथा सदभाव रखें। तेरा–मेरा की दौड़ में जीवन को नष्ट क्यों करें, मनुष्य जीवन की क्षणभंगुरता को भूलकर अपने सुखों को चिरस्थायी बनाने हेतु रात–दिन मारा–मारी करता फिर रहा है। अपने लब्ध सुखों के आनंद को भी व्यर्थ कर दिया है। कबीर की दृष्टि में संसार व्यर्थ नहीं है बल्कि मनुष्य ने अपनी अज्ञानता के कारण इसे दुखदायी बना दिया है। लोभ–लालच के कारण यहाँ छिना–झपटी, लूट–मार मची हुई है। फलस्वरूप ढोंग, छल–कपट, चमत्कार प्रदर्शन की होड़ लगी हुई है।
आज हम कोरोना महामारी की विकट परिस्थितियों से गुजर रहे हैं। जहाँ जीवन–मरण के संग्राम में मानवता चित्कार उठी है। दवाइयों, ऑक्सीजन, स्वास्थ्य सुविधाओं के अभाव में सांसे टूट रही हैं। ऐसे में भी समाज का एक वर्ग ऑक्सीजन, दवाई आदि की कालाबाजारी कर रहा है। हमारी मानवता और मानवीय संवेदनाओं पर भौतिकवादी सोच हावी हो गई है। अपने स्वार्थ के लिए मनुष्य बड़े से बड़ा अमानवीय कृत्य करने को भी तत्पर दिखता है। ऐसे में कबीर फिर से पढ़े और समझे जाने चाहिए। जीवन की सार्थकता एवं व्यर्थता के उनके विचारों को पुनः आत्मसात करने की आवश्यकता आ पड़ी है।
मनुष्य जिस धन–संपत्ति को प्राप्त करने के लिए अपना सब कुछ बर्बाद कर देता है। कबीर के अनुसार उस धन का जीवन में कोई लाभ नहीं मिलता। क्योंकि वह नैतिक–अनैतिक तरीके से कमाया हुआ होता है। धन के आधिक्य से भोग–विलास बढ़ता है और जीवन में पतनशील मूल्यों की वृद्धि होती है। भौतिक समृद्धि से कोई बड़ा या महान नहीं हो सकता। खजूर का पेड़ कितना भी ऊँचा क्यों न हो जाएँ, वह सामान्य लोगों को फल और छाया प्रदान नहीं कर सकता। अतः कबीर धन का मूल्य सामाजिक उपयोगिता से आंकते हैं। जरूरतमंदों के प्रति स्नेहपूर्वक उनकी जरूरतों को पूरा करने वाला व्यक्ति ही बड़ा होता है। कबीर यह भी कहते हैं कि धन अधिक होने पर पारिवारिक आत्मीयता, शांति तथा स्नेह नष्ट हो जाती है। सज्जन वही होता है जो अपने दोनों हाथों से गरीबों पर धन खर्च करें, क्योंकि वे अपने लिये धन एकत्र नहीं करतें–

वृक्ष कबहुँ नहिं फल भखे नदी न संचय नीर।
परमार्थ के कारने साधुन धरा सरीर।।[9]

कबीर आर्थिक स्वार्थ को त्यागकर संयमित होने की शिक्षा देते हैं। मनुष्य अपनी जरूरत के अनुसार ही धन संचय करें। तभी समाज में समता, नैतिकता एवं मानवता की बहाली हो सकेगी। आर्थिक स्वार्थ से नैतिकता का ह्रास होता है।
पुस्तकीय ज्ञान के महत्व पर भी कबीर के विचार अत्यंत प्रासंगिक हैं। आज शिक्षा के कई आयाम हैं। तकनीकी विकास के साथ समृद्ध शिक्षा प्रणाली का दंभ भर रहें हैं। बड़े से बड़े प्रमाणपत्र

प्राप्त कर बुद्धिजीवियों की पंक्ति में खड़े हैं। सवाल यह है कि हम कैसी शिक्षा का दंभ भर रहे हैं। जो नैतिक एवं मानवीय शिक्षा से परे केवल मानव रूपी मशीन तैयार कर रहा है। स्वार्थ, संवेदनहीनता से लबरेज मनुष्य जीवन के सत्य से भटक रहा है। कबीर स्वयं पढ़े–लिखें नहीं थे। अनपढ़ और नीच जाति से होने के कारण काशी के पंडितों से उलाहना पाते रहें। कबीरकालीन समाज तथा आज भी लोगों में अंधविश्वास व्याप्त है कि पढ़ा–लिखा व्यक्ति ही पंडित, विद्वान होता है। कबीर इस धारणा को तोड़ते हुए कहते हैं कि सच्चा पंडित पुस्तकीय ज्ञान से नहीं बनता, बल्कि प्रेम में डूबकर बनता है। वे पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा जीवन के अनुभव तथा सच्चे प्रेम को महत्व देते हैं

पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय।
एकै आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय्।[10]

निष्कर्ष

कह सकते हैं कि कबीरकालीन विकृतियों, असंगतियों, रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों से आज भी हमारा समाज मुक्त नहीं हो पाया है। जात–पांतए छुआछूत, सांप्रदायिकता, अशिक्षा, गरीबी जैसी विषमताएँ जड़ जमाये बैठी हैं। आर्थिक स्वार्थ, दंभ, नैतिक पतन ने व्यक्ति को संवेदनहीन और स्वार्थी बना दिया है। शोषण, उत्पीड़न, झूठ, फरेब आज और भयानक रूप में देखा जा सकता है। अतः कबीर के समता, स्वतंत्रता और भ्रातृत्व गढ़ने के विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं। जिन मानवीय मूल्यों की स्थापना हेतु वे जीवनभर संघर्षरत रहें, उस संघर्ष की लौ को फिर से जीवित रखने की आवश्यकता आ पड़ी है। प्रेम, मानवता, सद्भाव, सौहार्द और नैतिकता की बहाली के लिए कबीर के विचारों का पुनः अनुसरण समय की मांग है

संदर्भ सूची

1. छायावाद की प्रासंगिकता (रमेशचन्द्र शाह) वाग्देवी पॉकेट बुक्स प्रकाशनए बीकनेर, 2003 संस्करण पृ. 156.157
2. कबीर ग्रंथावली सटीक (डॉ. पुष्पपाल सिंह) अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली. 6, संस्करण 2006, पृ. 59
3. कबीर वचनामृत (विजयेन्द्र स्नातक, डॉ रमेशचन्द्र मिश्र) नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, छठा संस्करण, 2005, पृष्ठ.153
4. संत–काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता (रवीद्र कुमार सिंह) वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2005, पृ. 16
5. कबीर परिचय तथा रचनाएं (सुदर्शन चोपड़ा) हिन्दी पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, नवीन संस्करण, 2003, पृ. 35
6. संत.काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता (रवीद्र कुमार सिंह) वाणी प्रकाशनए नई दिल्ली द्वितीय संस्करण 2005, पृ. 86
7. कबीर परिचय तथा रचनाएं (सुदर्शन चोपड़ा) हिन्दी पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेडए नई दिल्ली, नवीन संस्करण, 2003, पृष्ठ.12
8. संत–काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता (रवीन्द्र कुमार सिंह) वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2005, पृ. 88
9. कबीर परिचय तथा रचनाएं (सुदर्शन चोपड़ा) हिन्दी पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, नवीन संस्करण, 2003, पृष्ठ 26
10. कबीर ग्रंथावली सटीक (डॉण्पुष्पपाल सिंह), अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली. 6, संस्करण 2006, पृष्ठ. 59